(कवित्त)

नैनन में लागै जाय जागै सु करेजे बीच
या बस ह्वै जीव धीर होत लोट-पोट है।
रोम-रोम पूरि पीर व्याकुल शरीर महा
घूमैं मति गति-आसैं प्यास की न टोट है।
चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन तें
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै तब तब अति मन भावै
अहा कहा विषम कटाछ-सर चोट है।४॥

प्रकरण—कटाक्ष-पात के आघात का वर्णन है। कटाक्ष बाण कहे जाते हैं, पर बाणों से बढ़कर इनका आघात होता है, बाणों से इनमें जो अन्तर है वही प्रेमिका सखी से कह रही है। लगते कहीं हैं, पीड़ा कहीं होती है। सहनशील

भी सहन नहीं कर पाते। पीड़ा जहाँ लगती है वहीं नहीं होती, शरीर में सर्वत्र होती है। प्यास कभी नहीं बुझती। जो चलाता है वह मारनेवाला नहीं जिलानेवाला है। जिसके द्वारा चलते हैं उसी की छटा रक्षा भी करती है। जब जब ये बाण आते हैं बहुत अच्छे लगते हैं।

चूर्णिका—नैनन० = कटाक्ष के बाण लगते तो हैं नेत्रों में पर जाकर कसकते हैं कलेजे में (असंगति)। या बस० = (बाणों का प्रहार तो धीर-वीर सह लेते हैं पर) कटाक्ष की चोट से वे भी लोट-पोट हो जाते हैं (सामान्य व्यक्तियों की चर्चा ही व्यर्थ है)। रोम० = (बाणों से पीड़ा वहीं होती है जहाँ वे धँसते हैं, पर कटाक्ष की) पीड़ा रोएँ-रोएँ में समा जाती है और सारा शरीर अत्यंत व्याकुल हो जाता है। घूमै० = बुद्धि गति (मार्ग पाने) की आशा में चक्कर खाने लगती है। टोट = (त्रुटि) कमी। प्यास० = (बाण की चोट में प्यास पानी पाकर कम पड़ जाती है) पर इसके प्रहार से तो प्यास की कमी होती ही नहीं। सजीवन = जिलानेवाले। दृग-हाथन० = नेत्ररूपी हाथों से या नेत्र के हाथों से (नराकृति कल्पना)। चलत० = ये जिलानेवाले सुजान प्रिय के नेत्ररूपी हाथों द्वारा छोड़े जाते हैं। अनियारी = तीखी चुभनेवाली, प्रभावशालिनी। रुचि = कांति, शोभा। रखवारी० = रक्षा करनेवाली आड़, ढाल या कवच। कांति की ओट लेकर ये बाण चलाए जाते हैं। जब जब = (अन्य बाण अपनी ओर आते अच्छे नहीं लगते पर ये) जब-जब आते हैं तब-तब मन को अत्यंत प्रिय लगते हैं। अहा = आश्चर्यजनक शब्द। कहा = क्या ही। विषम = विलक्षण। कटाछ० = कटाक्ष रूपी बाणों का प्रहार।

तिलक—अहा इन कटाक्ष-बाणों की चोट भी कितनी विलक्षण है कि कुछ कहा नहीं जा सकता? ये लगते नेत्रों में हैं और जाकर प्रकट होते हैं कलेजे के बीच। इनकी चोट की चपेट में पड़कर धीर व्यक्ति भी लोट पोट हो जाते हैं। इनकी पीड़ा रोएँ-रोएँ में भर जाती है, सारा शरीर अत्यंत व्याकुल हो जाता है। शरीर ही नहीं अंतःकरण भी। बुद्धि मार्ग पाने की आशा से चक्कर काटने लगती है और मार्ग नहीं पाती। उन बाणों के लगने से पानी पिलाने से प्यास कम पड़ जाती है, पर इनमें प्यास बढ़ती है (और अधिकाधिक चोट खाने की इच्छा होती है)। ये बाण सजीवन प्रिय सुजान के नेत्ररूपी हाथों से

छूटते हैं, उनकी शोभन तीखी छटा की ओट लेकर बाण चलते हैं। अपना बचाव बाण चलानेवाला सौंदर्य की छटा से कर लेता है। अथवा जिसको बाण लगते हैं उसको अपना बचाव प्रिय के सौंदर्य की ही ओट लेकर करना पड़ता है। ये जब-जब छूटकर आघात करने के लिए चलते हैं तब-तब मन को अत्यंत भाते हैं। इनमें प्रत्येक बात उन बाणों से विलक्षण है।

व्याख्या—नैनन० = दोनो नेत्रों में लगती है। लागैं० = लगती है, कुछ आघात की भाँति वेदनामूलक प्रहार नहीं होता। नेत्रों में जाकर लुप्त हो जाती है। जाय जागै = जाकर जगती है, प्रकट होती है। तुरंत वहाँ पहुँच जाती है। जागने के समय स्फूर्ति रहती है, यह भी अपना तीखापन प्रकट करती है। सु= सो, वह; कटाल-बाण की चोट। करेजे० = कलेजे के बीच, अर्थात् चोट का पूरा प्रभाव दिखाता है, इधर-उधर कलेजे में भी जगती तो पीड़ा कम होती। नेत्रों में चाहे जहाँ लगे, पर कलेजे पर प्रभाव पूरा पड़ता है। या बस० = इस चोट की चपेट में पड़कर, भली भाँति इसके प्रभाव में आकर। जीव = जीवटवाले, सहन करने में प्राणवत्ता को सँभाले रहनेवाले। धीर = जो अपने मार्ग से विचलित होनेवाले नहीं हैं—'पयः प्रविचलन्ति पदं न धीराः'। लोट-पोट = उभयपक्ष में लगता है। चोट से भी लोग लोट-पोट होते हैं और सौंदर्य पर भी लोट-पोट होते हैं। खड़े नहीं रह सकते। उन पर भी प्रभाव पड़ने में देर नहीं लगती। रोम०= प्रत्येक रोम में जो पीड़ा पूरी हो जाएगी वह मन और तन पर कितना अधिक प्रभाव डालनेवाली होगी, सहज ही इसका अंदाज लग सकता है। रोएँ में भी वह अधूरी नहीं पूरी है। इसी से शरीर महा व्याकुल है। घूमै = बुद्धि जो कुशाग्र होती है उसे भी मार्ग नहीं मिलता, वहीं चक्कर काटती है। केवल कलेजे में ही उसकी चोट नहीं है, शरीर भी आहत है और बुद्धि भी आहत है। बुद्धि विशेष आहत है, इसी से चक्कर खा रही है उसे। प्यास=उभयपक्ष में, बाण-पक्ष में पानी की प्यास और कटाक्ष-पक्ष में कटाक्षपात की इच्छा। टोट = ज्यों ज्यों प्यास बुझाने के प्रयास होते हैं त्यों-त्यों वह बढ़ती ही जाती है। चलत=बराबर उनका प्रहार होता ही रहता है। सजीवन = जिलानेवाले। जिलानेवाले और मारनेवाले का विरोध। सुजान = बाण चलाने में भी अत्यंत निपुण। इसी

से इस प्रकार का विलक्षण प्रहार होता है। दृग० = नेत्र भी दो और हाथ भी दो। बाण चलाने में दोनों हाथ काम करते हैं। प्यारी० = प्यारी भी और तीखी भी। चुभती भी है और रुचती भी है। रुचि = छटा, रुचनेवाली होने से ही छटा रुचि कहलाती है। रखवारी = रक्षा करनेवाली, इन बाणों से रक्षा भी वही छटा करती है, नेत्रों की छटा प्रहार भी करती है और वही रक्षा भी करती है। ओट = रक्षा का स्थान। 'ओट' उभयपक्ष में अन्वित हो सकती है—प्रिय पक्ष में भी और प्रेमी पक्ष में भी। बाण चलानेवाला भी ओट लेकर बाण चलाता है और प्रहार्य भी अपने बचाव के लिए ओट खोजता है। ज्यों = प्रत्येक प्रहार पहले से अधिक भाता है, उत्तरोत्तर उसकी रोचकता बढ़ती जाती है। विषम = विषमता प्रत्येक व्यवहार में है, उस बाण से इससे समता ही क्या।

पाठांतर—दृग-हेतु (प्रेम)। मन भावै-भावै ज्यावै (मारती नहीं जिलाती है)।

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहि
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौन कहूँ दीजिये सँदेसो तौन
आँखैं सम कीजिये जु कान तिहि काल हैं।
नेह-भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं॥४२॥

प्रकरण—विरहिणी अपने विरह का निवेदन कर रही है और बता रही है कि विरह की यह वेदना पत्रिका में लिखकर नहीं बताई जा सकती, स्वयम् लिखी नहीं जा सकती, लिखाई भी नहीं जा सकती। विरह की चोटें बहुत हैं, कहाँ तक लिखा-लिखाया जाय। लिखने में इस विरह वेदना को जब उँगली तक पहुँचाते हैं लिखने के लिए तो वही पंगु हो जाती है, विरह की दशा में बहुत ज्वाला है। संदेश भी नहीं दिया जा सकता। जब आँखों के समान कान,

कोई करे तो उस ज्वाला को धारण करे। जीभ पर हो बातें जल उठती हैं, मशालों की भाँति।

चूर्णिका—पाती० = पत्रिका में। छाती = छाती में लगे हुए विरह के घाव। छत = (क्षत)। लिखि० = न स्वयम् लिखे जा सकते हैं, न दूसरे से ही लिखाए जा सकते हैं (असंख्य और अकथनीय हैं)। घातो = घातक छुरी। विरह घाती = इस घातक बिरह ने। बहकि = लिखना छोड़कर। तहीं = त्यों ही। पाँगुरी = पंगुल, पंगु। किलकि = चिल्लाकर। आँगुरि = यदि पत्र लिखने का उपक्रम किया जाता है तो (विरह-दशा के ताप से) उँगली लिखना छोड़कर कहीं की कहीं जा पड़ती है और चिल्लाकर लँगड़ी हो जाती है, चलती ही नहीं। तातो = तप्त, गरम। राती = लाल; अनुरागमय। दसा = (दशा) अवस्था (विरह की); वत्ती। ताती० = (क्योंकि) संतप्त विरह दशा के समूह को ज्वाला का समूह ही समझना चाहिए (जो उँगलियों को जलाने लगता है)। जौव = (जौ + अब) अब जो यदि। तौव = (तौ + अब), तो अब, तो तब। जौव० = पत्र लिखने में तो ऐसी दुर्गति है। यदि कहो कि (पत्र मत लिखो) संदेश ही भेज दो, तो सुननेवाला संदेश सुनते समय यदि अपने कानों को आँवाँ की भाँति बना ले तब कहीं सुन सकता है। नेह = प्रेम; चिकना, तेल। बतें = (संदेश की वार्ता) वचन; बत्तियाँ। रसना = जीभ। उर आँच = अंतःकरण में छिपी विरह की आग की आँच। जागैं = जल उठती हैं। नेह-भीजा० = (संदेश सुनेवाले को तो यह दशा है; अब सुनानेवाले की दशा सुनिए) स्नेह से भींगी हुई बातें (वचन और बत्तियाँ) ज्यों ही जिह्वा पर लाई जाती हैं हृदय (के भीतर) से विरहाग्नि की ऐसी लपट उनमें लगती हैं कि वे (बातें) मशालों की भाँति जल उठती हैं (कहें भी तो कैसे कहें)।

तिलक—हे सुजान प्रिय, पत्रिका में वे छाती में लगे हुए घाव न तो लिखे ही जा सकते हैं और न दूसरे से लिखाए ही जा सकते हैं। घातक विरह ने अपनी छुरी से अनेक घाव करके ऐसी स्थिति ही उत्पन्न कर दी है। लिखते समय अँगुली ज्यों ही विरह की प्रेमाकुल तप्त दशा (गरम लाल बत्ती) के संपर्क में आती है त्यों ही वह लिखने के कार्य से विरत होकर चिल्लाती हुई पंगु हो जाती है। विरह की दशाओं में इतना अधिक ज्वाला-पुंज है कि उन्हें

वह सँभाल नहीं पाती। (यदि कहो कि लिखने लिखवाने के फेर में मत पड़ो, संदेश ही भेज दो तो) यदि कोई संदेश को सुनते समय जब अपने कान को आँवाँ की भाँति भीषण आग का धारणकर्ता बना ले तब उसे संदेश दिया जाय। किसी के कान उस भीषण विरह-ज्वाला को सहने को प्रस्तुत ही नहीं हो सकते। संदेश सुननेवाले की तो बात ही पृथक् है। मैं जब उन विरह की दशाओं को कहने में प्रवृत्त होती हूँ तब स्नेह (प्रेम; तेल) से सिक्त बातें (वार्ताएँ; बत्तियाँ) जब जीभ पर आती हैं तब उनमें हृदय में की विरह की आग की आँच लग जाती है और वे मशालपुंज की भाँति जल उठती हैं। मैं कह भी पाऊँ तो किस प्रकार कहूँ।

व्याख्या—पाती = पत्ती, जिसका आकार बहुत छोटा है उससे इन अनगिनत घावों का विवरण कैसे अँटेगा। छाती० = घावों की बात पृथक् 'छाती' स्वयम् पाती से बड़ी, छानेवाली है। छन० = घाव यदि केवल चित्र ही से व्यक्त करने हों तो भी पाती में स्थान नहीं, विवरण तो उनसे कहीं अधिक होगा। लिखी० = 'न लिखि जाहिं, न लिखाए जाहिं' का अन्वय है। कहीं 'लखाए' पाठ है वहाँ 'लिखकर लक्षित नहीं कराए जा सकते, बतलाए नहीं जा सकते' अर्थ करना पड़ेगा। लिखने में जो बाधा है उसका उल्लेख आगे है ही। अनुभव की जानेवाली स्थिति लिखी नहीं जा सकती, यह भी व्यंजना है। जो अनुभव करनेवाला है वही जब नहीं लिख पाता तब दूसरा क्या लिखेगा। लिखाए० = अपने लिखने में स्वयम् सोचो भी और लिखो भी दो आयास करने होते हैं, लिखाने में केवल एक आयास रह जाता है सोचकर कहते भर जाना है लिखने से छुट्टी मिली। काती० = काती का आघात गहरा भी होता है और वह बराबर आघात करती रह सकती है। छोटी होती है, चलाने में आयास उतना नहीं पड़ता। 'काती' द्वारा यह व्यंजित है कि चोटें बहुत अधिक की गई हैं। ले० = लेकर, बराबर लिए रहकर, छोटा ही नहीं, आघात का नैरंतर्य भी व्यंजित है। विरह = विरह स्वयम् बड़ा घाती है, आघात करने में दक्ष है, उसे चोट करने में मजा मिलता है। कीने = अभी तक जितना कर चुका वही बहुत है, भविष्य में न जाने और क्या होगा। जैसे० = जैसी हालत हो गई है

उसमें कोई कुछ कह सके यही उसके लिए अचरज है। आँगुरी० = जो सामान्यतया भोजन आदि बनाते समय तप्त वस्तुओं का स्पर्श कर लेने में दक्ष है वह उन विरह की दशाओं को सँभाल नहीं पाती। बहकि = जो लिखने में कभी बहकती नहीं है। तहीं = शीघ्रता की व्यंजना। पाँगुरी० = भविष्य के लिए भी, अन्य कार्यों के लिए भी बेकार हो जाती है। किलकि = अँगुली की नराकृति कल्पना, अँगुली चिल्लाती है, छटपटाती है। 'बहकने' में तो कुछ का कुछ लिखना भी है और लिखना छोड़ देने पर भी उस कार्य से हट जाना मात्र है। पर 'किलकने' में कार्य के छोड़ देने पर भी उसको वेदना से कराहते चिल्लाते रहने की स्थिति की व्यंजना है। होति = सदा के लिए हो जाती है; सुधार की संभावना नहीं रह जाती। तातो० = केवल तप्त होतीं तो कदाचित् सहन की जा सकतीं। 'राती' होने से वे अंगारे की भाँति हैं इससे उन्हें स्पर्श करना ही कठिन है। दसनि० = एक दशा हो तो भी कुछ सह्य हो, अनेक होने से असह्य स्थिति हो गई है। जाल = एक दूसरी में उलझी भी हैं, एक दूसरी के प्रमाद से और भी तीखी हो गई हैं। ज्वाल० = ज्वाला की माला कहने में उनका घिराव व्यंजित है। यदि ज्वालाएँ माला की भाँति घेरे रहें तो उनकी आँच निरंतर लगती रहेगी। जान० = इन विरह की वेदनाओं के अनंतर भी आप ज्यों के त्यों प्रिय हैं। जौन कहूँ = संदेश देने के लिए संदेश ले जानेवाला ही पहले नहीं मिलता यदि कहीं मिला और उसने संदेश सुनना स्वीकार किया। दीजियै = पहले तो संदेश ही भेजने की इच्छा नहीं होती यदि कहीं संदेश देने की प्रवृत्ति हो जाए। सँदेसौ = एक ही संदेश बहुत है अधिक की भी अपेक्षा नहीं। तौन = अचरज की भी व्यंजना है तब तो विलक्षण स्थिति हो जाती है। आँवाँ = कुम्हार के मिट्टी के बर्तन जिसमें आँच देकर पकाए जाते हैं वह, जिसमें आग भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। इसमें भी आँच केवल थोड़ी देर के लिए न होगी। सम = कान छोटे होते हैं, आँवाँ बड़ा होता है। इसलिए आँवाँ ही नहीं उसके समान कह दिया। कीजियै = पहले तो कोई उतना अधिक ताप सहन करने को प्रस्तुत नहीं यदि कोई प्रस्तुत भी हो गया तब। जु = यह 'जो' भी संभावना ही प्रकट करता है, होने में कठिनाई है फिर भी यदि। कान = जो बहुत कोमल हैं,

कड़ी आवाज सुनने में भी जिसे अरोचक प्रतीत होती है। तिहि० = उस समय यदि कोई वैसा कर ले तो फिर क्या, भविष्य में तो हो जा सकता है। उस वेदना की अभिव्यक्ति के समय ही वे सुनने में असमर्थ हो जाते हैं। सुनाते समय क्या सुनाएँगे। नेह० = स्नेह से 'आर्द्र' नहीं 'भीजी', बहुत अधिक स्नेह की व्यंजना। बातैं=एक होती तो भी कदाचित् वैसा न होता। रसना=रसवाली, जलवाली है, इसलिए हृदय की आँच कुछ रोकती भी रहती है, पर स्नेह की बात ही जल उठे तो उसमें भी भाप बनने लगेगी। पै = जीभ पर आने के पहले उनमें आँच नहीं लगती, यहीं आने पर लगती है। रसना, आस्वाद का अनुभव करानेवाली भी है। उर०=भीतर की आँच ही से बत्तियाँ जल उठती हैं, शीघ्र आग पकड़नेवाली हैं। लागैं = लगने पर विलंब नहीं लगता, तुरंत ही। जागैं= प्रचंडता से जलती हैं। पुंजनि० = मसाल-पुंजनि ज्यौं; उलटा समास है। हैं= इसका अन्वय 'जागैं' से है—'जागैं हैं' जहाँ जगीं तो फिर जगी ही रह जाती हैं। मसालें तेल से जलती हैं, उनमें तेल बराबर देते रहते हैं। इन (बातों) में भी स्नेह बराबर आता रहता है।

पाठांतर—लिखाय-लखाए। बहकि-चहकि (कदाचित् लिखावट से 'ब' का 'च' हो गया है।) कहूँ-काहू (किसी व्यक्ति को जो उसे सुनने-सुनाने को प्रस्तुत हो)।